**ओ३म्**

**‘सर्वशक्तिमन् ईश्वर की कृपा, रक्षा और सहाय से**

**हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

सभी मनुष्यों को नित्य-प्रति ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये जिससे वह कृतघ्नता के महापाप से बच सकता है। आज जिस मन्त्र को लेकर हम उपस्थित हुए हैं वह मन्त्र ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत आर्याभिविनय, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और संस्कारविधि में भावार्थ सहित उपलब्ध है। इस मन्त्र व इसके भावार्थ को बार-बार पढ़ने से मन में पवित्रता आती है और ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम व भक्ति का भाव उत्पन्न होता है। आप भी हमारे साथ इस मन्त्र व इसके भावार्थ का आनन्द ले सकते हैं। मन्त्र हैः **‘ओ३म् सह नाववतु सह नो भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्ति।।’** यह तैतिरीयारण्यक के प्रपा. 9 अनुवाक 1 का मन्त्र है। पहले इस मन्त्र का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ईश्वर प्रार्थना विषय से भावार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

**‘हे सर्वशक्तिमन्, हे ईश्वर ! आप की कृपा रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें और हम सब लोग परम प्रीति से मिल के सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ति राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आप के अनुग्रह से सदा भोगें। हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामथ्र्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहे और हे प्रकाशमय, हे सब विद्या के देने वाले परमेश्वर ! आपके सामथ्र्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे। हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें, किन्तु एक दूसरे के मित्र बनकर सदा वर्तें। हे भगवन् ! आपकी करुणा से हम लोगों के तीन ताप एक (आध्यात्मिक) जो कि ज्वारादि रोगों से शरीर को पीड़ा होती है, दूसरा (आधिभौतिक) जो दूसरे प्राणियों से होता है और तीसरा (आधिदैविक) जो कि मन और इन्द्रियों के विकार अशुद्धि और चंचलता से क्लेश होता है। इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये।’**

ईश्वर से प्रार्थना वा विनय की अपनी **‘आर्याभिविनय’** पुस्तक में महर्षि दयानन्द ने किंचित विस्तार से इस मन्त्र का भावार्थ प्रस्तुत किया है। वह लिखते हैं कि **‘हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से (एक दूसरे के) रक्षक हों। आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आपको ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद, परम-गुरु-आदि जानें, क्षण-मात्र भी आपको भूल के न रहें। आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें, आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परमपुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुःख न देख सकें, स्वदेशस्थादि मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त निर्वैर, प्रीतिमान एवं पाखण्ड-रहित करें तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें। हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें। आप हमको अपने अनन्त परमानन्द का भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को एक क्षण भी अलग न रक्खें। आपकी सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या उसको परस्पर परम पुरुषार्थ से प्राप्त हों।**

हे अनन्त विद्यामय भगवन् ! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठन-पाठन परमविद्यायुक्त हो तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हो। अन्योऽन्य प्रीति से व परमवीर्य पराक्रम से (हम) निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब पुरुष नीतिमान व सज्जन हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें, जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातन मतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के भूल जो पाखण्डमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों। और हे जगदीश्वर आप के सामथ्र्य से हम लोगों में परस्पर द्वेष अर्थात् अप्रीति न रहे, जिससे हम लोग कभी परस्पर द्वेष न करें, किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या, इनकी परस्पर सब के सुखोपकार से परमप्रीति से लगावें।

हे भगवन् ! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं--एक आध्यात्मिक (शारीरिक), जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है, दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प व्याघ्र, चैरादिकों से हाता है और तीसरा आधिदैविक, जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णातेत्यादि से होता है। हे कृपासागर ! आप इन तीन तापों से शीघ्र निवृत्ति करें, जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।

हे विश्वगुरो ! मुझको असत्=मिथ्या और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मंगलमय ! सब दुःखों से मुझको छुड़ा के सब सुखों को प्राप्त कर। हे प्रजापते ! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि हस्ति, अश्व, गाय आदि उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य, जो स्थिर परमसुखकारक हो, उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य ! सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे जिससे हे महाराजाधिराज ! मैं शुद्ध होके आपकी सेवा में स्थिर होऊं। हे न्यायाधीश ईश्वर ! कुकाम, कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को कृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर। मैं अत्यन्त दीन होके यही मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं। **हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राण-जीवन, सुराज्यप्रद ! हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्यन्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्याय-राज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो। आपके राज्य के अधिकारी किंकर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय ! हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश ! हमको धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो।।‘**

ऋषि दयानन्द जी ने उपर्युक्त मन्त्र का भावार्थ संस्कारविधि पुस्तक के गृहाश्रम प्रकरण में भी किया है। वहां वह लिखते हैं कि ‘हम स्त्री-पुरुष, सेवक-स्वामी, मित्र, पिता-पुत्रादि मिलके प्रीति से एक दूसरे की रक्षा किया करें और प्रीति से मिल के एक दूसरे के पराक्रम की बढ़ती सदा किया करें। हमारा पढ़ा-पढ़ाया अति प्रकाशमान होवे और हम एक दूसरे के साथ सत्यप्रेम से वत्र्तकर सब गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें। जिस परमात्मा का यह **‘ओ३म्’** नाम है, उस की कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर, मन और आत्मा का त्रिविध दुःख, जो कि अपने और दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्रीति से एक दूसरे के साथ वत्र्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सबको आनन्द में रक्खें।’

इस लेख में हमने आर्याभिविनय से ईश्वर की विनय का एक मन्त्र प्रस्तुत किया है तथा ऋषि दयानन्द द्वारा इस मन्त्र के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका व संस्कार विधि में दिए भावार्थ को भी सम्मिलित किया है। आर्याभिविनय पुस्तक पाठक को भक्तिरस में सराबोर कर ईश्वर भक्ति वा उपासना के फलों, बड़े से बड़े मृत्यु रूपी दुःख से मुक्ति सहित आनन्द व उत्साह आदि और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक व सक्षम है। इस पुस्तक के साथ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और संस्कारविधि का अध्ययन भी आत्मोत्थान व उन्नति में सहायक है। संसार के सभी मनुष्य ईश्वर द्वारा इस सृष्टि को बनाने व हमें मानवशरीर प्रदान करने के लिए उसके उपकृत व ऋणी हैं। हमारा कर्तव्य धर्म है कि हम सब वेदाध्ययन कर वैदिक पद्धति से ईश्वर की उपासना कर उसके ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करें। ईश्वर की उपासना करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। उपासना से उपासक को अनेक लाभ होते हैं। जो नहीं करता वह कृतघ्न होता है जिसका परिणाम अपनी हानि व अकल्याण के रुप में ही होता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि भौतिक व आर्थिक उन्नति व सम्पन्नता ही मनुष्य जीवन की समग्र उन्नति नहीं है। जीवात्मा अनादि, अविनाशी, अमर व नित्य है। हमें इस जन्म सहित अपनी आत्मा की जन्मोत्तर स्थिति के विषय में भी विचार करना चाहिये जो केवल वेदाध्ययन व इसके पूरक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश आदि के अध्ययन से ही सम्भव है। वैदिक योग दर्शन की विधि से उपासना करने से मनुष्य की किस सीमा तक उन्नति होती है इसका एक उदाहरण आर्यजगत के महान संन्यासी स्वामी सत्यपति जी, रोजड़ हैं। लेख को विराम देते हुए हम यह भी कहना चाहते हैं कि स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन किये बिना हम सच्चे व सफल उपासक शायद नहीं बन सकते। सभी को उनके ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। इसका भी एक उदाहरण पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी रहे हैं जिनका यश व कीर्ति आज भी विद्यमान है। इति।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**